The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 11 | November 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

Updated

बिहार के भागलपुर शहर में कार्यरत महरियों (दाइयों) की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण

Mrs. Doly Kumari

Research Scholar, University Department of Industrial Relations and Personnel Management (IRPM), TM Bhagalpur University, Bhagalpur, Email- dolysingh.dst@gmail.com

Dr. Sujit Kumar

University Department of IRPM T M Bhagalpur University Bhagalpur, India

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.17938497

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 27-11-2025

Published: 10-12-2025

Keywords:

महरियाँ, दाई-कार्य, असंगठित श्रम, मातृ स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय

ABSTRACT

भारत में मातृ-स्वास्थ्य सेवाओं का इतिहास केवल औपचारिक चिकित्सा संस्थानों और आधुनिक अस्पतालों तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह गहराई से सामाजिक, सांस्कृतिक और सामुदायिक संरचनाओं से जुड़ा रहा है। परंपरागत भारतीय समाज में महरियाँ (दाइयाँ) गर्भावस्था, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल की प्रमुख आधार-शिला थीं। वे न केवल चिकित्सकीय सहायता प्रदान करती थीं, बल्कि भावनात्मक संबल, सांस्कृतिक रीति-रिवाजों का निर्वहन और पारिवारिक विश्वास की प्रतीक भी थीं। उनका ज्ञान औपचारिक प्रशिक्षण पर आधारित न होकर अनुभव, परंपरा और पीढ़ीगत हस्तांतरण से विकसित हुआ था, जिससे वे स्थानीय परिस्थितियों और सामाजिक जरूरतों को बेहतर ढंग से समझ पाती थीं। इस प्रकार दाई-कार्य मातृत्व-सेवा के साथ-साथ सामुदायिक स्वास्थ्य की निरंतरता का भी माध्यम था। किन्तु औपनिवेशिक काल में पश्चिमी चिकित्सा पद्धतियों के आगमन, चिकित्सा के पेशेवरकरण तथा राज्य-प्रायोजित स्वास्थ्य नीतियों के विस्तार के साथ यह पारंपरिक व्यवस्था क्रमशः हाशिये पर चली गई। संस्थागत प्रसव और प्रमाणित स्वास्थ्य-कर्मियों को प्राथमिकता देने वाली नीतियों ने महरियों

के अनुभवजन्य ज्ञान को "अवैज्ञानिक" या "अप्रासंगिक" मानकर उपेक्षित कर दिया। परिणामस्वरूप महरियाँ न तो पूरी तरह औपचारिक स्वास्थ्य ढाँचे का हिस्सा बन सकीं और न ही उनके श्रम को वैकल्पिक आजीविका या सामाजिक सुरक्षा से जोड़ा गया। प्रस्तुत अध्ययन भागलपुर शहर में कार्यरत महरियों की आर्थिक स्थिति, सामाजिक हैसियत, श्रम-संरचना तथा लैंगिक-जातिगत आयामों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित करता है कि उनका श्रम असंगठित, सामाजिक रूप से अदृश्य और नीति-स्तर पर लगातार अवमूल्यित होता गया है, जो व्यापक सामाजिक अन्याय की ओर संकेत करता है।

1. भूमिका (Introduction)

भारत में प्रसव-सेवा का स्वरूप ऐतिहासिक रूप से केवल जैविक या चिकित्सकीय प्रक्रिया तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और लैंगिक संरचनाओं के भीतर विकसित हुआ है। परंपरागत भारतीय समाज में गर्भावस्था और प्रसव को सामुदायिक घटना के रूप में देखा जाता था, जहाँ परिवार, पड़ोस और विशेष रूप से महरियाँ (दाइयाँ) केंद्रीय भूमिका निभाती थीं। महरियाँ केवल प्रसव-सहायिका नहीं थीं, बल्कि वे स्त्रियों के अनुभवजन्य ज्ञान, स्थानीय विश्वासों और सांस्कृतिक परंपराओं की वाहक भी थीं। उनका कार्य शारीरिक देखभाल तक सीमित न होकर भावनात्मक सहयोग, सामाजिक संरक्षण और मातृत्व से जुड़े संस्कारों के निर्वहन तक विस्तृत था, जिससे प्रसव-सेवा एक मानवीय और सामाजिक प्रक्रिया बन जाती थी।

आधुनिक अस्पताल-आधारित प्रसव व्यवस्था के विकास से पूर्व महरियों का ज्ञान औपचारिक चिकित्सा शिक्षा से नहीं, बल्कि दीर्घकालिक अनुभव और पीढ़ीगत परंपरा से विकसित हुआ था। यह ज्ञान स्थानीय परिस्थितियों, संसाधनों और समुदाय की आवश्यकताओं के अनुरूप था। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ आज भी गरीबी, अशिक्षा और स्वास्थ्य-सुविधाओं की असमान उपलब्धता एक गंभीर वास्तविकता है, वहाँ महरियाँ निम्न-आय और हाशिये पर स्थित समुदायों के लिए एक सुलभ, विश्वसनीय और कम-खर्च विकल्प बनी हुई हैं। विशेषकर उन परिवारों के लिए, जो अस्पतालों की दूरी, खर्च या संस्थागत प्रक्रियाओं से वंचित हैं, महरियाँ आज भी मातृत्व-सेवा का पहला सहारा हैं।

भागलपुर शहर इस संदर्भ में एक विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक विरोधाभास प्रस्तुत करता है। एक ओर यह शहर शहरीकरण, आधुनिक चिकित्सा संस्थानों और स्वास्थ्य-नीतियों के विस्तार का प्रतीक है, वहीं दूसरी

ओर यहाँ झुग्गी-बस्तियाँ, अनौपचारिक आवास और निम्न-आय समुदाय भी बड़ी संख्या में विद्यमान हैं। इन क्षेत्रों में स्वास्थ्य-सुविधाओं की सीमित पहुँच के कारण महरियाँ आज भी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। वे उन स्थानों तक पहुँचती हैं जहाँ औपचारिक स्वास्थ्य तंत्र की पहुँच कमजोर या अनुपस्थित है, जिससे उनकी उपयोगिता आज भी बनी हुई है।

इसके बावजूद महरियों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक सुरक्षा और पेशागत पहचान निरंतर क्षीण होती जा रही है। आधुनिक स्वास्थ्य नीतियों में संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने के साथ-साथ महरियों के पारंपरिक ज्ञान और श्रम को न तो समुचित मान्यता दी गई और न ही उन्हें औपचारिक ढाँचे में समाहित किया गया। परिणामस्वरूप वे असंगठित श्रम के रूप में कार्य करने को विवश हैं, जहाँ न न्यूनतम आय की गारंटी है, न सामाजिक सुरक्षा और न ही सामाजिक सम्मान। यह स्थिति न केवल महरियों के व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है, बल्कि मातृत्व-सेवा की उस वैकल्पिक परंपरा के क्षरण को भी दर्शाती है, जो लंबे समय तक भारतीय समाज की स्वास्थ्य-संरचना का आधार रही है।

2. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. भागलपुर शहर में कार्यरत महरियों की आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करना।
2. महरियों की सामाजिक स्थिति, जातिगत पृष्ठभूमि और लैंगिक अनुभवों का अध्ययन करना।
3. दाई-कार्य को असंगठित श्रम के रूप में समझना।
4. राज्य और स्वास्थ्य-नीतियों में महरियों की भूमिका एवं उपेक्षा का परीक्षण करना।

3. शोध-प्रणाली (Research Methodology)

यह अध्ययन **वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक** पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का प्रयोग किया गया है।

- **प्राथमिक स्रोत:**
    - भागलपुर शहर की विभिन्न बस्तियों में कार्यरत महरियों से साक्षात्कार
    - सहभागी अवलोकन (Participant Observation)
- **द्वितीयक स्रोत:**

- जनगणना आँकड़े
- स्वास्थ्य मंत्रालय की रिपोर्टें
- असंगठित श्रम और स्त्री-श्रम पर उपलब्ध शोध

4. महरियों की सामाजिक पृष्ठभूमि

फील्ड अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि भागलपुर शहर में कार्यरत अधिकांश महरियाँ सामाजिक संरचना के हाशिये पर स्थित समुदायों से आती हैं। इनमें दलित, पिछड़ी जातियाँ तथा अत्यंत आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की महिलाओं का अनुपात उल्लेखनीय रूप से अधिक है। सामाजिक-आर्थिक वंचना, सीमित शैक्षिक अवसर और वैकल्पिक रोजगार की अनुपलब्धता ने इन महिलाओं को दाई-कार्य से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कई महरियाँ स्वयं इस कार्य को "पेशा" कम और "मजबूरी" अधिक मानती हैं, क्योंकि उनके लिए यह आजीविका का लगभग एकमात्र उपलब्ध साधन है। इस प्रकार महरियों की सामाजिक पृष्ठभूमि यह दर्शाती है कि दाई-कार्य व्यक्तिगत चयन से अधिक संरचनात्मक असमानताओं का परिणाम है।

महरियों का दाई-कार्य किसी औपचारिक प्रशिक्षण या प्रमाण-आधारित चिकित्सा शिक्षा का परिणाम नहीं है, बल्कि यह परंपरागत ज्ञान के हस्तांतरण पर आधारित है। यह ज्ञान प्रायः माँ से बेटी या समुदाय की वरिष्ठ महिला से युवती तक मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होता रहा है। इस ज्ञान-प्रणाली में स्थानीय शरीर-ज्ञान, अनुभवजन्य उपचार, घरेलू औषधियों और सांस्कृतिक प्रथाओं का समावेश होता है। लंबे समय तक यह ज्ञान सामुदायिक विश्वास और सामाजिक स्वीकृति के आधार पर वैध माना जाता रहा, जिससे महरियाँ स्थानीय समाज में सम्मान और भरोसे की पात्र थीं।

किन्तु आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के विस्तार और चिकित्सा के पेशेवरकरण के साथ इस परंपरागत ज्ञान को "अवैज्ञानिक", "असुरक्षित" अथवा "अप्रासंगिक" घोषित कर दिया गया। राज्य-प्रायोजित स्वास्थ्य नीतियों और अस्पताल-आधारित प्रसव व्यवस्था ने महरियों को औपचारिक स्वास्थ्य ढाँचे से बाहर कर दिया, बिना उन्हें वैकल्पिक प्रशिक्षण या संस्थागत समावेशन का अवसर दिए। इसका सीधा प्रभाव उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा पर पड़ा, जहाँ एक समय सम्मानित भूमिका निभाने वाली महरियाँ धीरे-धीरे सामाजिक रूप से अवमूल्यित और अदृश्य श्रमिक के रूप में देखी जाने लगीं।

इस प्रक्रिया में जाति और लिंग की संरचनाएँ एक-दूसरे से जुड़कर महरियों के हाशियाकरण को और गहरा करती हैं। स्त्री-श्रम होने के कारण दाई-कार्य को स्वाभाविक, घरेलू और कम-मूल्य का मान लिया

गया, जबकि निम्न जातीय पृष्ठभूमि ने उनके श्रम को सामाजिक रूप से और भी कम प्रतिष्ठित बना दिया। परिणामस्वरूप महरियाँ न केवल आर्थिक रूप से असुरक्षित हैं, बल्कि सामाजिक सम्मान और पहचान के स्तर पर भी निरंतर क्षरण का सामना कर रही हैं।

5. आर्थिक स्थिति का विश्लेषण

आर्थिक दृष्टि से भागलपुर शहर में कार्यरत महरियाँ अत्यंत असुरक्षित और अनिश्चित जीवन-स्थितियों में कार्य कर रही हैं। फील्ड अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि अधिकांश महरियाँ नियमित मासिक आय या वेतन पर नहीं, बल्कि प्रति-प्रसव भुगतान की व्यवस्था पर निर्भर हैं। यह भुगतान न तो पूर्व-निर्धारित होता है और न ही किसी औपचारिक मजदूरी-मानक से जुड़ा होता है। कई मामलों में प्रसव-सेवा के बाद मिलने वाली राशि परिवार की आर्थिक क्षमता, सामाजिक संबंधों और स्थानीय परंपराओं पर निर्भर करती है, जिससे महरियों की आय अत्यंत अस्थिर बनी रहती है। इस प्रकार उनका श्रम समय, जोखिम और जिम्मेदारी के अनुपात में उचित आर्थिक प्रतिफल प्राप्त नहीं कर पाता।

महरियों की औसत आय अनियमित होने के साथ-साथ मौसमी भी है। वर्ष के कुछ महीनों में प्रसव-मामलों की संख्या अधिक होने पर आय बढ़ जाती है, जबकि अन्य समय में आय लगभग नगण्य रह जाती है। अनेक महरियों ने यह भी बताया कि भुगतान कई बार नकद के बजाय वस्तुओं के रूप में किया जाता है—जैसे अनाज, पुराने कपड़े या घरेलू उपयोग की वस्तुएँ। यह व्यवस्था एक ओर पारंपरिक लेन-देन प्रणाली को दर्शाती है, वहीं दूसरी ओर महरियों की आर्थिक निर्भरता और सौदेबाजी-क्षमता की कमजोरी को भी उजागर करती है। ऐसी स्थिति में उनकी आय न केवल अपर्याप्त होती है, बल्कि सम्मानजनक आजीविका की अवधारणा से भी दूर प्रतीत होती है।

यह आर्थिक संरचना असंगठित श्रम की विशिष्ट विशेषताओं को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है। महरियाँ किसी भी प्रकार की न्यूनतम मजदूरी के दायरे में नहीं आतीं, न ही उनके कार्य-घंटे, कार्य-स्थितियाँ या पारिश्रमिक किसी कानूनी ढाँचे द्वारा विनियमित हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें सामाजिक सुरक्षा, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, स्वास्थ्य बीमा या दुर्घटना बीमा जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। परिणामस्वरूप बीमारी, वृद्धावस्था या कार्य-अक्षमता की स्थिति में उनकी आर्थिक असुरक्षा और अधिक गहरी हो जाती है।

इस संदर्भ में महरियों की आर्थिक स्थिति केवल व्यक्तिगत गरीबी का प्रश्न नहीं रह जाती, बल्कि यह राज्य और समाज द्वारा स्त्री-प्रधान असंगठित श्रम की व्यवस्थित उपेक्षा को दर्शाती है। देखभाल-कार्य (Care Work) के रूप में दाई-कार्य को "स्वाभाविक" स्त्री-कर्तव्य मानकर उसके आर्थिक मूल्य को कम

आँका गया है। इससे महरियाँ ऐसे चक्र में फँस जाती हैं, जहाँ उनका श्रम आवश्यक तो है, किंतु अदृश्य और अवमूल्यित बना रहता है। यह स्थिति आर्थिक न्याय और श्रम-अधिकारों की व्यापक बहस में महरियों के प्रश्न को केंद्रीय रूप से स्थापित करने की आवश्यकता को रेखांकित करती है।

6. श्रम-संरचना और कार्य-स्थितियाँ

महरियों का श्रम-स्वरूप अत्यंत जटिल और बहुआयामी है, जिसमें शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक–तीनों प्रकार के श्रम का समावेश होता है। प्रसव-सेवा का कार्य किसी निश्चित समय-सीमा में बँधा नहीं होता; महरियों को दिन-रात किसी भी समय बुलाया जा सकता है, जिससे उन्हें लंबे समय तक जागरण और निरंतर उपलब्धता की स्थिति में रहना पड़ता है। यह अनियमितता उनके स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन और सामाजिक संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। प्रसव की प्रक्रिया के दौरान उत्पन्न तनाव, आपात परिस्थितियों का सामना और मातृ-शिशु की सुरक्षा की जिम्मेदारी उनके मानसिक दबाव को और अधिक बढ़ा देती है।

कार्य-स्थितियों की दृष्टि से महरियाँ अत्यंत असुरक्षित वातावरण में कार्य करती हैं। अधिकांश मामलों में उनके पास न तो स्वच्छता-संबंधी पर्याप्त साधन होते हैं और न ही सुरक्षा उपकरण, जैसे दस्ताने, मास्क या संक्रमण-रोधी सामग्री। घरेलू प्रसव के दौरान रक्तस्राव, संक्रमण और अन्य जटिलताओं का जोखिम लगातार बना रहता है, किंतु इसके बावजूद महरियों के लिए नियमित स्वास्थ्य जाँच या बीमा जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार उनका श्रम न केवल कठिन है, बल्कि स्वास्थ्य-जोखिमों से भरा हुआ भी है, जिसे औपचारिक स्वास्थ्य तंत्र ने लगभग अनदेखा कर दिया है।

भावनात्मक स्तर पर भी महरियों का श्रम कम चुनौतीपूर्ण नहीं है। प्रसव के समय महिलाओं की पीड़ा, परिवार की आशाएँ और कई बार शिशु या माता से जुड़ी अनिश्चितताएँ महरियों पर भावनात्मक दबाव उत्पन्न करती हैं। सफल प्रसव की स्थिति में श्रेय प्रायः परिवार या चिकित्सकीय व्यवस्था को मिल जाता है, जबकि किसी जटिलता या असफलता की स्थिति में दोष का भार महरियों पर आ जाता है। यह असमान उत्तरदायित्व उनके श्रम को और अधिक अदृश्य तथा असुरक्षित बना देता है।

इन सभी परिस्थितियों के बावजूद महरियों के श्रम को “देखभाल कार्य” (Care Work) कहकर अर्थव्यवस्था के हाशिये पर रखा गया है। देखभाल-कार्य को पारंपरिक रूप से स्त्री-स्वभाव से जुड़ा मानकर उसके आर्थिक और सामाजिक मूल्य को कम आँका गया है। परिणामस्वरूप महरियों का श्रम न तो उत्पादक श्रम के रूप में मान्यता प्राप्त करता है और न ही उसे श्रम-अधिकारों के दायरे में शामिल किया जाता है। यह स्थिति स्त्री-श्रम के व्यापक अवमूल्यन और लैंगिक असमानता की उस संरचना को उजागर

करती है, जिसमें आवश्यक और जीवन-रक्षक कार्य भी सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से गौण बना दिए जाते हैं।

7. राज्य, नीति और संस्थागत उपेक्षा

भारत में मातृ-स्वास्थ्य सेवाओं के क्षेत्र में राज्य की भूमिका मुख्यतः **संस्थागत प्रसव को बढ़ावा देने** पर केंद्रित रही है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन (NHM) और जननी सुरक्षा योजना (JSY) जैसी योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य प्रसव को घर से अस्पताल की ओर स्थानांतरित करना रहा है, ताकि मातृ और शिशु मृत्यु दर को कम किया जा सके[1]। निस्संदेह इन योजनाओं से स्वास्थ्य संकेतकों में सुधार हुआ है, किंतु इस प्रक्रिया में परंपरागत दाई-प्रणाली और महरियों की भूमिका को लगभग पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया। नीति-निर्माण में यह मान लिया गया कि आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था अपने आप पारंपरिक प्रणालियों का स्थान ले लेगी, जबकि जमीनी यथार्थ इससे भिन्न रहा है।

महरियों को न तो नियमित स्वास्थ्य-कर्मी का दर्जा दिया गया और न ही उन्हें सहायक स्वास्थ्य-कर्मियों के रूप में औपचारिक प्रणाली से जोड़ा गया। आशा और एएनएम जैसी श्रेणियों के निर्माण में जहाँ आंशिक रूप से सामुदायिक महिलाओं को शामिल किया गया, वहीं महरियों के अनुभवजन्य ज्ञान और लंबे कार्य-अनुभव को संस्थागत मान्यता नहीं दी गई। इसके अतिरिक्त, उन क्षेत्रों में जहाँ घरेलू प्रसव आज भी जारी हैं, महरियाँ अनौपचारिक रूप से कार्य करती रहीं, किंतु राज्य द्वारा उन्हें प्रशिक्षण, निगरानी या सहयोग की कोई ठोस व्यवस्था उपलब्ध नहीं कराई गई।

नीतिगत उपेक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि महरियों के लिए वैकल्पिक आजीविका या पुनःप्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था भी नहीं की गई। जिन नीतियों के माध्यम से पारंपरिक दाई-कार्य को हतोत्साहित किया गया, उन्हीं नीतियों में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि महरियाँ अपनी जीविका कैसे चलाएँगी। परिणामस्वरूप अनेक महरियाँ न तो पूरी तरह दाई-कार्य छोड़ सकीं और न ही उन्हें किसी अन्य रोजगार में समाहित किया जा सका। यह स्थिति उन्हें आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक अनिश्चितता के दोहरे संकट में डाल देती है।

इस प्रकार महरियाँ **नीति-संक्रमण (Policy Transition)** की प्रत्यक्ष पीड़ित बन गई हैं—जहाँ एक ओर पुरानी व्यवस्था को अवैध या अप्रासंगिक घोषित कर दिया गया, वहीं दूसरी ओर नई व्यवस्था में उनका समावेशन नहीं हुआ। यह संस्थागत उपेक्षा केवल प्रशासनिक चूक नहीं है, बल्कि यह उस दृष्टिकोण को दर्शाती है जिसमें स्त्री-प्रधान, परंपरागत और असंगठित श्रम को विकास की प्रक्रिया में सहज ही त्याग दिया जाता है। अतः महरियों की स्थिति यह प्रश्न उठाती है कि क्या स्वास्थ्य-नीतियाँ केवल दक्षता और

आँकड़ों पर आधारित होंगी, या वे सामाजिक न्याय और श्रम-अधिकारों के व्यापक सरोकारों को भी सम्मिलित करेंगी।

8. लैंगिक और जातिगत आयाम

दाई-कार्य का स्वरूप मूलतः **स्त्री-केन्द्रित** होने के साथ-साथ **जातिगत रूप से हाशियाकृत** है, जिससे यह श्रम दोहरे दमन (Double Marginalisation) की स्थिति में आ जाता है। एक ओर यह कार्य स्त्रियों द्वारा किया जाता है, इसलिए इसे पारंपरिक रूप से "स्वाभाविक" स्त्री-कर्तव्य मान लिया गया है; दूसरी ओर इसे प्रायः निम्न जातियों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की महिलाओं से जोड़ा जाता है, जिससे इसका सामाजिक मूल्य और भी कम हो जाता है। इस प्रकार लिंग और जाति की संरचनाएँ एक-दूसरे को सुदृढ़ करते हुए महरियों के श्रम को सामाजिक सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर स्थापित कर देती हैं।

लैंगिक दृष्टि से दाई-कार्य को देखभाल-कार्य (Care Work) की श्रेणी में रख दिया गया है, जिसे उत्पादक श्रम के समान महत्व नहीं दिया जाता। प्रसव-सेवा जैसी जीवन-रक्षक भूमिका निभाने के बावजूद महरियों का श्रम "घरेलू" और "भावनात्मक" मानकर उसकी आर्थिक कीमत तय नहीं की जाती। यह दृष्टिकोण स्त्री-श्रम के उस ऐतिहासिक अवमूल्यन को दर्शाता है, जिसमें महिलाओं द्वारा किया गया श्रम समाज के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक होने के बावजूद अदृश्य बना रहता है। परिणामस्वरूप महरियाँ न केवल कम आय प्राप्त करती हैं, बल्कि श्रम-अधिकारों और सामाजिक सुरक्षा से भी वंचित रह जाती हैं।

जातिगत संदर्भ में देखा जाए तो महरियाँ प्रायः दलित और पिछड़ी जातियों से आती हैं, जहाँ शारीरिक श्रम, "अपवित्र" माने जाने वाले कार्य और सेवा-आधारित भूमिकाएँ ऐतिहासिक रूप से थोपी जाती रही हैं। प्रसव, रक्त और शारीरिक द्रवों से जुड़ा दाई-कार्य जाति-व्यवस्था में निम्न स्थान पर रखा गया, जिससे महरियों को सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं हो सका। यह स्थिति यह स्पष्ट करती है कि दाई-कार्य का अवमूल्यन केवल आर्थिक या पेशागत नहीं है, बल्कि यह गहराई से जातिगत पूर्वाग्रहों में निहित है।

इस दोहरे दमन का परिणाम यह है कि महरियों का श्रम न केवल आर्थिक रूप से अवमूल्यित है, बल्कि सामाजिक रूप से भी अदृश्य बना दिया गया है। नीतिगत विमर्श में उनका उल्लेख नगण्य है और सामाजिक चेतना में उनकी भूमिका गौण कर दी गई है। इस प्रकार महरियों की स्थिति भारतीय समाज में लैंगिक असमानता और जातिगत वर्चस्व की संयुक्त संरचना को उजागर करती है, जहाँ आवश्यक और जीवन-रक्षक श्रम भी सामाजिक न्याय और सम्मान से वंचित रह जाता है।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

भागलपुर शहर में कार्यरत महरियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दाई-कार्य को केवल मातृ-स्वास्थ्य सेवा के तकनीकी या चिकित्सकीय प्रश्न के रूप में समझना अपर्याप्त होगा। वास्तव में यह श्रम **सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और श्रम-अधिकारों** से गहराई से जुड़ा हुआ मुद्दा है। महरियाँ एक ऐसी सेवा प्रदान करती हैं जो जीवन-रक्षा और सामाजिक पुनरुत्पादन के लिए अनिवार्य है, किंतु इसके बावजूद उनका श्रम असंगठित, अवमूल्यित और सामाजिक रूप से अदृश्य बना दिया गया है। यह स्थिति भारतीय समाज में स्त्री-प्रधान, जातिगत रूप से हाशियाकृत श्रम की व्यापक उपेक्षा को प्रतिबिंबित करती है।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि महरियाँ आज भी विशेषकर निम्न-आय और वंचित समुदायों के लिए एक आवश्यक स्वास्थ्य-संसाधन बनी हुई हैं। इसके बावजूद राज्य और समाज दोनों ने उन्हें विकास और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में पीछे छोड़ दिया है। आधुनिक स्वास्थ्य नीतियों ने संस्थागत प्रसव को बढ़ावा तो दिया, किंतु महरियों को न तो औपचारिक स्वास्थ्य-कर्मी के रूप में मान्यता दी और न ही उनके लिए वैकल्पिक आजीविका या पुनःप्रशिक्षण की पर्याप्त व्यवस्था सुनिश्चित की। परिणामस्वरूप महरियाँ ऐसी स्थिति में पहुँच गई हैं जहाँ उनकी सेवाएँ ली तो जाती हैं, पर उन्हें न सम्मान मिलता है और न ही सुरक्षा।

अतः यह आवश्यक है कि महरियों को **असंगठित श्रमिक** के रूप में कानूनी मान्यता प्रदान की जाए और उनके श्रम को श्रम-अधिकारों के दायरे में लाया जाए। इसके अंतर्गत उन्हें न्यूनतम आय की गारंटी, स्वास्थ्य बीमा, सामाजिक सुरक्षा तथा प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए, ताकि वे सुरक्षित और सम्मानजनक आजीविका प्राप्त कर सकें। साथ ही, उनके पारंपरिक ज्ञान को पूर्णतः खारिज करने के बजाय उसे आधुनिक स्वास्थ्य प्रणाली के साथ समन्वित करने की संभावनाओं पर भी गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए।

अंततः यह शोधपत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महरियों का पुनर्समावेशन केवल स्वास्थ्य-नीति का तकनीकी प्रश्न नहीं है, बल्कि यह **भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक न्याय, समानता और गरिमा के आदर्शों की पुनर्स्थापना** का प्रश्न है। महरियों की स्थिति पर गंभीर नीति-हस्तक्षेप न केवल मातृ-स्वास्थ्य सेवाओं को अधिक समावेशी बना सकता है, बल्कि यह हाशिये पर स्थित स्त्री-श्रम को सामाजिक मान्यता और न्याय दिलाने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

References

1. Baru, R., & Nundy, M. (2008). Blurring of boundaries: Public–private partnerships in health services in India. *Economic and Political Weekly, 43*(8), 62–71.
2. Jeffery, P., & Jeffery, R. (1993). *Population, gender and politics: Demographic change in rural North India*. Cambridge University Press.
3. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India. (2005). *National Rural Health Mission: Framework for implementation*. Government of India.
4. National Commission for Enterprises in the Unorganised Sector. (2009). *The challenge of employment in India*. Government of India.
5. Rege, S. (2013). *Against the madness of Manu: B. R. Ambedkar's writings on Brahmanical patriarchy*. Navayana.
6. Sathyamala, C. (2012). Maternal health policies, discourses and practices in India. *Social Change, 42*(3), 371–395.
7. Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Oxford University Press.
8. Van Hollen, C. (2003). *Birth on the threshold: Childbirth and modernity in South India*. University of California Press.